Thearyasamaj.org

RNI No. 26281/74 रजि. नं. पी.बी./जे.एल–011/2015-17

आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब

कृण्वन्तो ओ३म् विश्वमार्यम्

साप्ताहिक

आर्य मर्यादा

आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब का प्रमुख साप्ताहिक पत्र

मूल्य : 2 रु.
वर्ष: 72 अंक : 14
सृष्टि संवत् 1960853116
5 जुलाई 2015
दयानन्दाब्द 189
वार्षिक : 100 रू.
आजीवन : 1000 रू.
दूरभाष : 2292926, 5062726

जालन्धर

वर्ष–72, अंक : 14, 2/5 जुलाई 2015 तदनुसार 21 आषाढ़ सम्वत् 2072 मूल्य 2 रु०, वार्षिक 100 रु० आजीवन 1000 रु०

तू प्राणों का ऋषि है

-ले० श्री स्वामी वेदानंद जी (दयानन्द) तीर्थ

त्र्यर्यमा मनुषो देवताता त्री रोचना दिव्या धारयन्त।
अर्चन्ति त्वा मरुतः पूतदक्षास्त्वमेषामृषिरिन्द्रासि धीरः।।

-ऋ० ५।२९।१

शब्दार्थ-हे इन्द्र-इन्द्र! **मनुषः**-मननशील, **देवताता**-दिव्य गुणों के विस्तार के लिए, **त्री**-तीनों-श्रवण, **मनन निदिध्यासन**-कार्यों में, **अर्यमा**-न्याययुक्त व्यवहार को, न्यायकारी परमेश्वर को धारण करते हैं और **त्री**-तीन प्रकार के, **दिव्या**-दिव्य, **रोचना**-प्रकाशों को, **धारयन्त**-धारण करते हैं, **पूतदक्षाः**-पवित्र क्रिया वाले, **मरुतः**-प्राण, **त्वा**-तुझको, **अर्चन्ति**-पूजते हैं, **त्वम्**- तू, **धीरः**-परम ध्यानी, **एषाम्**-इनका, **ऋषिः**-ऋषि, **असि**-है।

व्याख्या-परमात्मा परम देव है, उसमें सभी दिव्य गुणों का अवसान-पराकाष्ठा है। मनुष्य यदि दिव्य गुणों का विस्तार करना चाहें तो-

त्र्यर्यमा मनुषो धारयन्त-श्रवण, मनन, निदिध्यासन-तीन प्रकार से अर्यमा को, न्यायकारी भगवान् को अपने आगे रखें, अर्थात् भगवद्भक्ति के मार्ग में पग धरने वाले को सबसे पूर्व अपने व्यवहार की शुद्धि करनी चाहिए, क्योंकि-

युक्ताहारविहारस्य योगो भवति दुःखहा।

उचित आहार-व्यवहार वाले के लिए ही योग दुःखनाशक हुआ करता है।

अतः अपना व्यवहार न्याययुक्त करना अत्यन्तावश्यक है, इसीलिए योगी लोग सबसे पूर्व यम-नियम का उपदेश करते हैं जो इस प्रकार व्यवहार शुद्ध करके श्रवण, मनन, निदिध्यासन करते हैं, वे-

'त्री रोचना दिव्य धारयन्त' तीन दिव्य प्रकाशों को धारण करते हैं। उन्हें मनःप्रकाश, आत्मप्रकाश तथा परमात्मप्रकाश-इन तीनों प्रकाशों की प्राप्ति होती है। प्रकाश प्राप्त करने से आत्मा पूजनीय बन जाता है, क्योंकि प्रकाश की सभी पूजा करते हैं। भगवान् जीव से कहते हैं-...द! तू पूज्य बन गया है, अतः **'अर्चन्ति त्वा मरुतः पूतदक्षाः'**-...त्र कर्म वाले प्राण तुझे पूज रहे हैं। प्राणों का व्यवहार बड़ा पवित्र ...तो सबको पवित्र कर देते हैं। जैसा कि मनु जी कहते हैं-

...न्ते ध्मायमानानां धातूनां हि यथा मलाः।
तथेन्द्रियाणां दह्यन्ते दोषाः प्राणस्य निग्रहात्।।

-मनु० ६।७१

जैसे अग्नि से धौंकायी जाती हुई (तपाई जाती हुई) धातुओं के मल-मैल जल जाते हैं, वैसे ही प्राण के संयम से इन्द्रियों के दोष जल जाते हैं, अर्थात् अग्नि के तपाने से जैसे सुवर्ण आदि धातुओं के दोष नष्ट होकर वे शुद्ध हो जाते हैं, वैसे प्राण को वश में करने से मन आदि इन्द्रियों के दोष नष्ट हो जाते हैं। योगिराज दयानन्द महाराज ने भी लिखा है-

जब मनुष्य प्राणायाम करता है तब प्रशिक्षण उत्तरोतर काल में अशुद्धि का नाश और ज्ञान का प्रकाश होता जाता है। जब तक मुक्ति न हो जाए, आत्मा का ज्ञान बढ़ता जाता है।"

-स० प्र० तृतीयसम्मुलास

"प्राण अपने वश में होने से मन और इन्द्रियां भी स्वाधीन होते हैं। बल-पुरुषार्थ बढ़कर बुद्धि तीव्र, सूक्ष्म रूप हो जाती है कि जो बहुत कठिन और सूक्ष्म विषय को भी शीघ्र ग्रहण करती है। इससे मनुष्य शरीर में वीर्य वृद्धि को प्राप्त होकर स्थिर बल, पराक्रम, जितेन्द्रियता, सब शास्त्रों को थोड़े ही काल में समझकर उपस्थित कर लेगा।"

-स० प्र० तृतीय सम्मुलास

'प्राण पवित्र होकर इन्द्र की पूजा करते हैं।' इससे एक उपदेश और निकलता है कि पूजा करने के लिए करने वाले को पहले अपने-आपको पवित्र करना चाहिऐ। अपवित्र मनुष्य पूजा कर ही नहीं सकता।

इन्द्र! तेरा महत्त्व और भी है-'त्वमेषामृषिरिन्द्रासि धीरः' तू धीर-ध्यानी होने पर इनका ऋषि है, द्रष्टा है, गति दाता है। आत्मा न रहे तो प्राण की गति बन्द हो जाए। प्राणों की क्रिया तभी तक चलती है जब तक देह में आत्मा का निवास है। आत्मा ने देह छोड़ा नहीं कि रानी मक्खी के पीछे मधुमक्खियों की भांति प्राण भी आत्मा के पीछे प्रयाण कर देते हैं। सामान्य जनों को प्राणों के गमनागमन का ज्ञान ही नहीं हो पाता। ध्यानी को इनकी गतिविधि का केवल ज्ञान ही नहीं होता, प्रत्युत ये इनको तथा सब क्रियाओं, व्यवहारों को हस्तामलकवत् साक्षात् करता है। इसके मनन करने की आवश्यकता है।

-स्वाध्याय संदोह से साभार

Thearyasamaj.org

महामृत्युञ्जय-मन्त्रार्थविवेचनम्

-ले० पण्डित वेदप्रकाश शास्त्री, 4-E, कैलाश नगर, फाजिलका, मोबाइल-94634-28299

ओ३म् त्र्यम्बकं यजामहे सुगन्धिम् पुष्टिवर्धनम्।
उर्वारुकमिव बन्धनात् मृत्योर् मुक्षीय माऽमृतात्।
-ऋ० 7।59।12; यजु. 3/60

शब्दार्थ-हम सभी (सुगन्धिम्) शुद्ध, उत्तम गन्ध, सम्बन्ध युक्त एवं ओजपूर्ण (पुष्टिवर्धनम्) शारीरिक, आत्मिक और सामाजिक बलवर्द्धक, जीवन का परिवर्तन, संवर्धन एवं पोषणकर्त्ता (त्र्यम्बकम्) ऋग्, यजु, साम मन्त्रों द्वारा ज्ञान, कर्म, उपासना भक्ति का उपदेश करने वाले त्रिकालदर्शी, त्र्यम्बकदेव, रूद्ररूप जगदीश्वर की (यजामहे) समर्पित भाव से यजन एवं स्तुति करते हैं। (इव) जैसे (उर्वारूकम्) खरबूजा समयानुसार पूर्णरूपेण पक कर स्वत: ही (बन्धनात्) लता के सम्बन्ध से मुक्त हो जाता है, वैसे ही हम भी पूर्ण परिपक्व अवस्था को प्राप्त होकर (मृत्यो:) मृत्युभय से अथवा इस मरण धर्मा शरीर अर्थात् सांसारिक बन्धनरूप जन्म-मरण के चक्र से (मुक्षीय) मुक्त हो जाएं परन्तु (अमृतात्) मोक्षरूप अमृत सुख से (मा) कभी अलग न हों।

भगवन्! जैसे खरबूजा लता में लगा हुआ अपने आप पककर समय आने पर लता से मुक्त हो जाता है, वैसे ही हम सभी पूर्ण आयु को भोगकर शरीर से छूटकर मुक्ति को प्राप्त हों। परन्तु मोक्ष की प्राप्ति के लिए अनुष्ठान और परलोक की इच्छा से कभी भी अलग न हों।

ऋग्वेद एवं यजुर्वेद का यह विशिष्ट मन्त्र ''मृत्युन्जय मन्त्र'' के नाम से प्रसिद्ध है। जिसका अर्थ है-मृत्यु को जीतने वाला। अनेक विद्वान् इसे ''महामृत्युञ्जय मन्त्र'' भी कहते हैं। परन्तु इतना तो स्पष्ट ही है कि यह मन्त्र मृत्यु पर विजय प्राप्ति हेतु प्रेरित करता है। आत्मविश्वास जगाता है। इसका अर्थ यह भी नहीं है कि मृत्यु होगी ही नहीं। मृत्यु तो अवश्य होगी क्योंकि संसार नश्वर है, अनित्य है, कुछ भी शाश्वत नहीं। जन्म लेने वाले की मृत्यु और मरे हुए का जन्म निश्चित है-

जातस्य हि ध्रुवो मृत्युः ध्रुवं जन्म मृत्यस्य च।। -गीता 2/27

मृत्यु अवश्यंभावी है। बस हमें इतना अवश्य ध्यान रखना चाहिए कि मन्त्रानुसार आचरण करते हुए मृत्यु पूर्ण अवस्था भोग कर आनी है, पहले नहीं। वेद में मनुष्य की आयु सौ वर्ष वर्णित है-

जीवेम शरदः शतम्।।
-यजु० 36/24

हम सौ वर्ष तक जीवित रहें।

भूयश्च शरदः शतात्।।
-यजु० 36/24

सौ वर्ष से अधिक जीवित रहने पर भी हम भली-भांति स्वस्थ एवं आनन्दपूर्वक रहें। यह है पूर्ण आयु। वस्तुत: आहार, व्यवहार, सदाचार आदि नियमों का पालन करते हुए जीवन व्यतीत करें तभी शतायु हो सकते हैं और हमारी प्रार्थना सार्थक और सफल कही जा सकती है।

अत: योगिराज श्री कृष्ण कहते हैं-

युक्ताहारविहारस्य युक्त-चेष्टस्य कर्मसु।
युक्तस्वप्नावबोधस्य योगो भवति दु:खहा।। -गीता 6/17

दु:खों का नाश करने वाला योग तो यथायोग्य आहार और विहार करने वाले का तथा कर्मों में यथायोग्य चेष्टा करने वाले का और यथायोग्य शयन करने तथा जागने वाले का ही सिद्ध होता है।

नियमबद्ध व्यक्ति का जीवन शतायु प्राप्त करने में अवश्य सफल हो सकता है।

मृत्युकाल अर्थात् प्रयाण के समय यदि इस संसार का साहचर्य, आकर्षण व्यक्ति को ईप्सित और लिप्सित कर रहा हो तो निश्चित ही व्यक्ति मृत्युलोक के तीव्र आकर्षणों, प्रलोभनों की रज्जू में बंध कर पुन: इहलोक में अंकुरित होगा अर्थात् जन्म लेगा। प्राणियों, सम्बन्धियों और पदार्थों की कामनाएं उसे बांधे रहेंगी। वह दिव्य लोकों की ओर गति नहीं कर सकेगा। अत: अन्तिम समय से पूर्व ही जब व्यक्ति काम, क्रोध, लोभ, मोह, ईर्ष्या-द्वेष, आकर्षण, वासना, सांसारिक पदार्थों के प्रति लिप्सा एवं बन्धनों को काट देगा तभी वह मुक्ति की ओर अग्रसर हो सकेगा।

भगवान् श्री कृष्ण अर्जुन से कहते हैं-

प्रजहाति यदा कामान् सर्वान् पार्थ मनोगतान्।
आत्मन्येवात्मना तुष्टः स्थितप्रज्ञस्तदोच्यते।। 2/55

हे अर्जुन! जब मनुष्य मन में स्थित सम्पूर्ण कामनाओं को त्याग देता है, उस समय आत्मा से आत्मा में सन्तुष्ट हुआ स्थिर बुद्धि वाला कहा जाता है।

दु:खेष्वनुद्विग्नमनाः सुखेषु विगतस्पृहः।
वीतरागभयक्रोधः स्थित-धीर्मुनि-रुच्यते।। 2/56

दु:खों के प्राप्त होने पर जिसका मन व्याकुल नहीं होता, सुखों की प्राप्ति होने पर जिसकी लालसा नहीं होती, जिसके भय, क्रोध, अनुराग नष्ट हो गए हैं, ऐसा मुनि स्थिरबुद्धि कहा जाता है।

ध्यायतो विषयान् पुंसः सङ्गस्तेषूपजायते।
सङ्गात् संजायते कामः कामात् क्रोधोऽभिजायते।। 2/62

विषयों का चिन्तन करने वाले पुरुष की उन विषयों में आसक्ति हो जाती है और आसक्ति से उन विषयों की कामना उत्पन्न होती है। कामना में विघ्न पड़ने से क्रोध उत्पन्न होता है।

क्रोधाद्भवति सम्मोहः सम्मोहात् स्मृतिविभ्रमः।
स्मृतिभ्रंशाद् बुद्धिनाशो बुद्धिनाशात् प्रणश्यति।। 2/63

क्रोध से अज्ञान उत्पन्न होता है और अज्ञान से स्मृति अर्थात् स्मरण शक्ति भ्रमित हो जाती है, स्मृति के भ्रमित हो जाने से बुद्धि का नाश हो जाता है, बुद्धि के नाश होने से मनुष्य अपने श्रेयसाधन से गिर जाता है।

विहाय कामान् यः सर्वान् पुमांश्चरति निः स्पृहः।
निर्ममो निरहंकारः स शान्तिमधिगच्छति।। 2/71

जो पुरुष सम्पूर्ण कामनाओं को त्याग कर ममता, अहंकार और लालसा रहित होकर बर्तता है, वह शान्ति को प्राप्त होता है।

वस्तुत: यह है मुक्ति की ओर अग्रसर होने की विधि। ऐसा व्यक्ति ही मृत्यु पर विजय प्राप्त कर अमृत की ओर कदम बढ़ाएगा और कहेगा-''हे प्रभो! मृत्योर्माऽमृतं गमय। मृत्यु से अमृत की ओर ले चलो।''

हे त्र्यम्बकरूप परमात्मन् देव! खरबूजे के समान हमारा चैतन्य पिण्ड किसी भी वासना बेल, इच्छित कामना लता अथवा लिप्सा के आकर्षण सूत्र से बंधने न पाए। हमें ऐसा विज्ञान सामर्थ्य प्रदान कर कृतार्थ करें। आप हमारी योग साधना के परिणामस्वरूप हमें मृत्यु से मुक्त करके अमृतत्व की ओर उन्मुख करें।

योगसाधकों के लिए यह अत्यन्त सिद्ध मन्त्र है। इसे विधिवत् समझ कर शुद्ध साधना द्वारा स्वयं को उसी के अनुरूप रूपान्तरित करें।

यदि गम्भीरतापूर्वक विचार किया जाए तो प्रतीत होता है कि स्वाभाविक और उचित मृत्यु वही होती है जिसमें शरीर इस प्रकार सहज में ही छूट जाता है, जैसे पका हुआ फल डाल से टूट कर गिर जाता है। हम चाहते हैं कि हमारी मृत्यु ऐसी ही हो।

वस्तुत: पूरा पका हुआ फल अधिक से अधिक अपनी पुष्टि को प्राप्त कर चुका होता है, जो उसे वृक्ष से मिलनी चाहिए थी। साथ ही पकने पर उसमें मनोहर सुगन्ध भी आ जाती है। उस समय उसे अलग करने के लिए प्रयत्न नहीं करना पड़ता। वह अपने आप ही अलग हो जाता है। हम भी यह चाहते हैं कि इसी प्रकार हमारी स्वाभाविक मृत्यु हो। हे त्रिकालदर्शी रूद्ररूप भगवन्! इसीलिए हम आपका यजन-स्तुति करते हैं। इस यजन के करने से हम स्वत: ही संसार रूपी वृक्ष पर शनै: शनै: पकते जाएंगे अर्थात् परिपक्व अवस्था वार्धक्य को प्राप्त हो जाएंगे। हे सुन्दर गन्धदायक एवं पुष्टिकारक प्रभो! हम आपकी उपासना करते हैं। आपकी उपासना से हम परिपक्व अवस्था को निर्विघ्न प्राप्त हों, पुष्टि से भी युक्त हों। इस पकी हुई अवस्था में शरीर को छोड़ना दुखदायी नहीं अपितु स्वाभाविक और शान्तिदायक सिद्ध होगा। (शेष पृष्ठ 7 पर)

Thearyasamaj.org

सम्पादकीय.....

प्राणायाम से मानसिक शक्तियों का विकास

प्राणायाम का उद्देश्य केवल मनुष्य को स्वस्थ, बलवान एवं चिरायु बनाना ही नहीं है, अपितु मनुष्य की मानसिक तथा आत्मिक शक्तियों का विकास करना भी है, और यही प्राणायाम का उद्देश्य है। हमारे शरीर में पांच कोश तथा आठ चक्र हैं। इन कोशों के भीतर प्रवेश करने से जहां आत्मिक शक्तियों का विकास होता है, वहां चक्रों को जागृत करने से मनुष्य की मानसिक शक्तियों का विकास होता है। ये चक्र संख्या में आठ हैं, जैसे मूलाधार, स्वाधिष्ठान, मणिपूरक, सूर्य, अनाहत, विशुद्धि, आज्ञा तथा ब्रह्मरन्ध्र। मूलाधार-गुदा के पास, स्वाधिष्ठान- मूलाधार से चार अंगुल ऊपर, मणिपूरक-नाभि स्थान में, सूर्य-पेट के ऊपर रीड़ की हड्डी के दोनों ओर, अनाहत- हृदय में विशुद्धि कण्ठ में, आज्ञा चक्र- भृकुटि में, तथा ब्रह्मरन्ध्र- ललाट के ऊपर है। योग ग्रन्थों में इन चक्रों के सम्बन्ध में बहुत वर्णन किया गया है।

हमारे समस्त शरीर में ज्ञानतन्तु जाल के समान फैले हुए हैं। यही ज्ञानतन्तु हमें रूप, रस, गन्ध आदि विषयों का ज्ञान कराते हैं तथा अनेक शारीरिक और मानसिक शक्तियों के आधार हैं। ये ज्ञानतन्तु हमारे शरीर रूपी नगर में, सड़कों के समान अथवा देहरूपी राष्ट्र में रेल की लाईनों के समान फैले हुए हैं। जैसे शहर में सड़कों के अनेक केन्द्र होते हैं, जहां पर कई सड़कें आकर मिलती हैं उसी प्रकार हमारे शरीर में भी प्रत्येक विषय के ज्ञानतन्तुओं के केन्द्र हैं। जहां पर उस-उस विषय के ज्ञानतन्तु आकर मिलते हैं। उन्हीं ज्ञानतन्तुओं के केन्द्रों का नाम चक्र है। इन चक्रों में अनेक शारीरिक तथा मानसिक दैवी शक्तियां निहित हैं, जोकि इन चक्रों के जागृत करने से ही प्रकट होती हैं। उन्हीं दिव्य शक्तियों को आजकल के योगियों ने ब्रह्मा आदि देवताओं का स्वरूप दे दिया है। जिस मनुष्य का जिस विषय का चक्र जागृत होता है, उसके ज्ञानतन्तुओं के जागृत होने से उन-उन ज्ञानतन्तुओं से सम्बन्धित समस्त शारीरिक तथा मानसिक दिव्य शक्तियां भी जागृत हो जाती हैं। इन्हीं षट् चक्रों को आधुनिक साईंस वालों ने हारमोन्स के नाम से कहा है और इन मूलाधार आदि चक्रों के उन्होंने अपनी परिभाषा में निम्न नाम रखे हैं- प्रोस्टेट, ऑवेरियन, एडेनेलिन, पेनक्रियास, थाइराइड, थाइमॉस और पियूटरी ग्लैण्ड। इन ग्लैण्ड्स के आधुनिक विज्ञानवेत्ताओं ने जो-जो प्रभाव शरीर, मन और आत्मा पर बताए हैं वैसे ही प्रभाव हठयोगियों ने भी षट चक्रों की जागृति के बताए हैं।

इन सभी ज्ञानतन्तुओं के केन्द्रों अर्थात् मूलाधार आदि चक्रों को जागृत करने का मुख्य साधन प्राणायाम ही है। प्राणायाम का पूर्ण अभ्यासी जिस चक्र को जागृत करना चाहता है उसमें प्राणायाम के द्वारा प्राणों को केन्द्रित कर उस चक्र को जागृत कर लेता है। योगियों की अनेक प्रकार की शारीरिक तथा मानसिक शक्तियों के, जिन्हें कि हम सिद्धियों के नाम से पुकारते हैं, उनके विकसित होने का रहस्य भी प्राणायाम ही है।

मानसिक शक्तियों के विकास का दूसरा साधन चित्त की एकाग्रता है। जिसका जितना चित्त एकाग्र होगा, उसकी उतनी ही मानसिक शक्तियां विकसित होंगी। किन्तु चित्त या मन का सहसा एकाग्र होना बहुत कठिन है। क्योंकि भौतिक जगत में चित्त सबसे अधिक सूक्ष्म तथा चंचल वस्तु है। सूक्ष्म वस्तु का रोकना बहुत कठिन हुआ करता है। यही कारण है कि हम बिना अभ्यास के यदि चाहें तो अपने चित्त को दो-चार मिनट तक भी रोककर एकाग्र नहीं कर सकते। इन चित्तवृत्तियों के रोकने के लिए ही योग का प्रादुर्भाव हुआ है और यह भी ध्रुव सत्य है कि बिना चित्त की एकाग्रता के न तो लौकिक उन्नति ही कर सकते है और न ही पारलौकिक। जिसका जितना अधिक चित्त एकाग्र होगा, उतना उसके चित्त में अधिक बल, पराक्रम तथा नाना प्रकार की दिव्य शक्तियों का विकास होगा। जिनके द्वारा वह संसार के महान् से महान् कार्यों को भी बड़ी सुगमता से पूर्ण कर सकेगा और प्रभु भक्ति तथा आत्म चिन्तन में भी उसका मन भली प्रकार लग सकेगा। विक्षिप्त अर्थात् चंचल मन न तो किसी संसारिक महत्त्वपूर्ण कार्य में सफलता प्राप्त कर सकता है और न ही आध्यात्मिक कार्यों में। एकाग्रचित्त जहां उस बड़ी नहर के समान है, जिसके जल के वेग में एक महान् शक्ति निहित है वहाँ चंचल मन उस नहर के नाना दिशाओं में फूटे हुए उन छोटे नालों के समान है, जिन नालों के जल के वेग में नहर के वेग की अपेक्षा शतांश भी सामर्थ्य तथा शक्ति नहीं है। अत: संसारिक तथा आध्यात्मिक उन्नति के अभिलाषी का यह सबसे पहला कर्त्तव्य है कि वह अपने चित्त को एकाग्र करे। चित्त को शुद्ध तथा एकाग्र करने का मुख्य तथा सरल साधन है- प्राणों को अपने वश में करना। प्राणायाम एक प्रकार का मानसिक स्नान है। जैसे शरीर को शुद्ध करने के लिए स्नान की आवश्यकता है, वैसे ही मन को शुद्ध और एकाग्र करने के लिए प्राणायाम की आवश्यकता है। प्राण और मन का परस्पर घनिष्ठ सम्बन्ध है, मानो ये दोनों एक ही पेड़ के तने से निकलने वाली दो शाखाएं हैं। यदि प्राण चंचल और अस्थिर हैं, दूसरे शब्दों में हमारे वश में नहीं है तो मन हमारे वश में कभी नहीं हो सकता। जिस प्रकार बाह्य जगत में वायु के चलने पर वृक्षादि सब पदार्थ चलने तथा हिलने लगते हैं और वायु के बन्द होने पर वे स्थिर हो जाते हैं, उसी प्रकार शरीर के अन्दर की प्राण वायु जब तक चलायमान रहती है, तब तक इन्द्रियां और मन भी चलायमान, चंचल रहते हैं। प्राणायाम के द्वारा उनके स्थिर हो जाने पर मन भी स्थिर, शांत और एकाग्र हो जाता है। इसलिए मन की चंचलता अर्थात् गति को रोकने के अभिलाषी को पहले प्राणों की गति को रोकना अर्थात् उसे अपने वश में करना चाहिए। प्राणों के वश में होते ही मन या चित्त स्वयं वश में हो जाता है। इसीलिए चित्त की एकाग्रता का, चित्त की दिव्य शक्तियों के विकास का प्राणायाम ही मुख्य तथा सरल साधन है। इसीलिए योगदर्शन के समाधिपाद में जहां चित्त की एकाग्रता के अनेक साधन लिखे हैं, वहां प्राणायाम को भी चित्त की एकाग्रता का मुख्य साधन बताया है। जैसा कि योगदर्शन में लिखा है- प्रच्छर्दन-विधारणभ्यां वा प्राणस्य अर्थात् प्राणों के बाहर लेने तथा अन्दर रोकने से भी चित्त एकाग्र हो जाता है। अत: चित्त को एकाग्र करने, मानसिक शक्तियों के विकास करने तथा शारीरिक स्वास्थ्य, बल तथा आरोग्यता प्राप्त करने और दीर्घायु के लाभ प्राप्त करने का यदि कोई मुख्य तथा सर्वोत्तम साधन है तो वह प्राणायाम ही है। प्राणायाम मन को शान्त, एकाग्र और बलवान् बनाता है। मन की प्रसुप्त दैवी शक्तियों को जागृत करता है। शरीर को शुद्ध पवित्र और बलवान् बनाकर उसे तेजस्वी तथा कान्तिमय बना देता है। शरीर के सब दोषों तथा मलों को प्रदीप्त अग्नि के समान जला देता है और रेचक के द्वारा शरीर के सब विकारों को बाहर फैंक देता है। प्राणायाम आदि योगाभ्यास करने से सब शारीरिक तथा मानसिक रोगों का क्षय अर्थात् नाश हो जाता है।

प्रेम भारद्वाज, संपादक एवं सभा महामन्त्री

Thearyasamaj.org

आचार्य पंडित उमाकान्त जी में था पाण्डित्य एवं व्यक्तित्व का अद्भुत संगम

-ले० खुशहाल चन्द्र आर्य गोविन्द राम आर्य एण्ड सन्स, 180 महात्मा गांधी रोड कोलकत्ता

पूज्य पंडित उमाकान्त जी उपाध्याय का निधन एक लम्बी बिमारी के पश्चात् दिनांक 2 नवम्बर सन् 2014 तदनुसार वार रविवार को प्रातः आठ बजे हो गया। वे न केवल बंगाल या भारत के ही विख्यात् विद्वान् व साहित्य साधक थे बल्कि पूरे विश्व में उनका एक वैदिक विद्वान् व साहित्य साधक के रूप में बड़ा सम्मान था। वे एक असाधारण व्यक्तित्व के धनी थे और उनके व्यक्तित्व तथा विद्वता का प्रभाव एक अनजान व्यक्ति पर भी पड़ता था। पण्डित जी केवल कलकत्ता के ही नहीं बल्कि पूरे बंगाल की पहचान बन गए थे। मेरी उनमें बहुत अधिक श्रद्धा थी और वे भी मुझे बहुत प्यार करते थे। जब कभी भी मिलते थे या फोन करते थे तो कहते थे कि मैं आपके लेख अनेक पत्र पत्रिकाओं में पढ़ता हूं तो मुझे बड़ी प्रसन्नता होती है। आपके लेखों में निरन्तर प्रगति देखकर मेरे मन को बड़ी शान्ति मिलती है। आप ऐसे ही लेख लिखते रहें ताकि आर्य जगत में कलकत्ता का नाम सब के मुख पर आता रहे।

मेरे से उनका प्रेम का परिचय इन्हीं बातों से लगता है कि मेरे चार पुत्र और एक पुत्री है। एक पुत्र चि. दिनेश का पुनर्विवाह मुझे एक खड़गपुर की विधवा लड़की से दोबारा करना पड़ा जिसकी गोद में 3-4 साल की एक बच्ची भी है, यह भी अपनी मां के साथ आ गई थी। इस प्रकार मैंने कुल छः विवाह संस्कार करवाए। प्रसन्नता की बात यह है कि सभी विवाह संस्कार पूज्य आचार्य पंडित उमाकान्त जी के कर-कमलों द्वारा सुसम्पन्न हुए और संस्कारों की सभी ने प्रशंसा की। खड़गपुर वाले साह जी तो इतने अधिक प्रसन्न हुए कि उन्होंने अपने एक मित्र के लड़के का विवाह संस्कार भी पण्डित जी से करवाया। इससे भी अधिक प्रसन्नता की बात यह है कि विवाह केवल कलकत्ता में ही नहीं, संस्कारों के लिए आचार्य जी ने कभी झरिया, कभी रामगढ़ (झारखण्ड) कभी फारविशगंज (बिहार) भी जाना पड़ा। उन्होंने कभी भी अपनी स्वीकृति देने में देरी नहीं की और पूछने पर सदैव प्रसन्नता ही प्रकट की। यह उनकी महानता थी। बहुत समय पहले की बात है, पण्डित जी स्व. लालमन जी आर्य से मिलने हिसार गए थे। वहां से उनको स्व. अमीलाल जी आर्य से मिलने बहल जाना था। हिसार से बहल जाते समय मेरा गांव देवराला, रास्ते में आता है। उस समय मेरे बहनोई पूज्य फूलचन्द जी आर्य मुरीरा वाले भी जीवित थे। पण्डित जी, लालमन जी आर्य व फूल चन्द जी आर्य तीनों ही बहल जाते समय 2-3 घण्टों के लिए मेरे स्व. पिता गोविन्द राम आर्य जिनको सम्मान के रूप में सभी ''प्रधान जी'' के नाम से सम्बोधित करते थे। उनसे मिलने के लिए देवराला ठहरे। पण्डित जी मेरा घर देखकर तथा पिता जी के सत्कार व सम्मान से इतने अधिक प्रभावित हुए कि वे कई बार जब भी मुझ से मिले तब उस यात्रा की चर्चा करना कभी नहीं भूले।

वैसे तो पण्डित जी कलकत्ता के सभी आर्य समाजों के आचार्य थे, फिर भी आर्य समाज कलकत्ता के विशेष रूप में आचार्य थे। वे आचार्य पद पर रहते हुए पच्चास वर्षों से भी अधिक समय तक ''आर्य संसार'' मासिक पत्रिका का सम्पादन बहुत ही योग्यता के साथ बहुत ही सुन्दर ढंग से किया जिससे इस पत्रिका को आर्य जगत् में एक विशेष स्थान प्राप्त है। मुझे इस बात की प्रसन्नता है कि मेरे लेख व कविताएं पण्डित जी बराबर प्रकाशित करते रहते हैं। अब भी इस पत्रिका का सम्पादन मण्डल मेरे लेख व कविताओं को बराबर प्रकाशित कर रहा है। इसलिए मैं उनका हृदय से आभार व्यक्त करता हूं। यह पत्रिका कलकता के सभी परिचित आर्य समाजियों के पास जाती है। इसलिए इस पत्रिका में लेख व कविता का प्रकाशित होना अपना एक अलग महत्त्व रखता है। पण्डित जी ने काफी पुस्तकें भी लिखी हैं तथा कई स्मारकों का सम्पादन भी किया है जो आर्य जगत् में अपना विशेष स्थान रखती हैं। उन्होंने आर्य समाज कलकत्ता का और आर्य समाज बड़ा बाजार का इतिहास भी लिखा है, जिनको पढ़ने से उनकी विद्वता, परिश्रम, लगन और जानकारी का प्रत्यक्ष प्रदर्शन हो जाता है।

जिस प्रकार मेरे प्यारे भारत देश की गुलामी की जंजीरों को काटने के लिए सैंकड़ों नहीं सहस्त्रों क्रान्तिकारियों ने जीवन भेंट चढ़ाया जिनमें दो परिवारों का योगदान अत्याधिक है। सन् 1857 के स्वतन्त्रता संग्राम के बाद सन् 1897 में प्रथम बार एक ही परिवार के तीन चापेकर बन्धु जिनके नाम दामोदर दास चापेकर, बाल कृष्ण चापेकर व वासुदेव चापेकर था। उन्होंने पूना में अंग्रेज़ी सरकार के अन्याय के विरुद्ध फांसी के फन्दे को चूमा। दूसरा नाम आता है वीर सावरकर बन्धुओं का, जिनके नाम थे, बड़े का नाम गनेश पन्त सावरकर बीच वाले का नाम सुविख्यात विनायक सावरकर तथा छोटे का नाम नारायण सावरकर या जिन्होंने देश को आजादी दिलाने के लिए अपने पूरे जीवन को काला पानी अण्डमान की जेल की अमानवीय यातनाओं को सहन करते हुए तिल-तिल करके बलिदान कर दिया। इन परिवारों ने तो देश की स्वतन्त्रता दिलाने के लिए अपना जीवन न्यौछावर किया, उसी प्रकार पंडित उमाकान्त जी उपाध्याय का पूरा परिवार जिसमें भाई स्वर्गीय पंडित श्रीकान्त जी व भतीजा स्वर्गीय पंडित वाचस्पति जी आते हैं। इन्होंने भी अपना पूरा जीवन वैदिक सिद्धान्तों के प्रचार व प्रसार के लिए तथा महर्षि दयानन्द द्वारा स्थापित आर्य समाज की उन्नति व समृद्धि के लिए आहूत कर दिया। आर्य जगत इनका सदैव सम्मान करते हुए ऋर्णी रहेगा।

पंडित उमाकान्त जी उपाध्याय के जाने से आर्य जगत् की जो अपूर्णीय क्षति हुई है। उसकी पूर्ति होना असम्भव सा प्रतीत होता है। ईश्वर इस क्षति की शीघ्र ही पूर्ति करे जिससे आर्य समाज का कार्य सुचारू रूप से आगे बढ़ता रहे। मैं पण्डित जी के निधन पर अपना गहरा शोक प्रकट करता हूं और उनकी आत्मा की सद्गति व शान्ति प्राप्ति के लिए तथा उनके परिवार वालों को इस दारूण दुख को सहन करने की शक्ति दे। इसके लिए परम् पिता परमात्मा से प्रार्थना करता हूं। साथ ही आचार्य जी की साहित्य साधना व आर्य समाज की सेवा को नमन करते हुए उनके प्रति अपने श्रद्धा सुमन समर्पित करता हूं।

आर्य जगत के सर्वोच्च पुरस्कारों के लिए जीवन दानियों, विद्वानों एवं भजनोपदेशकों से आवेदन पत्र आमंत्रित

1. आर्य रत्न पुरस्कार सृ. सं. 1960853113.14.15.16 के लिए पुरस्कार संख्या 4 प्रत्येक पुरस्कार एक लाख रुपया 100,00,00 चार विद्वान् जीवन दानियों से आवेदन पत्र आमंत्रित है, जिनका पूरा जीवन परोपकार, त्याग, तपस्या, समाज सेवा, योग, शिक्षा, गौसंवर्धन एवं आर्ष प्राच्याविद्या के प्रसार व प्रचार में नैष्ठिक जीवन के साथ निस्वार्थ भाव से उल्लेखनीय योगदान रहा है।

2. आर्य विभूषण पुरस्कार सृ सं. 1960853114.15.16 के लिए पुरस्कार संख्या 3 के प्रत्येक पुरस्कार 51000.00 रुपया इक्यावन हजार रुपयों का, उन विद्वानों को दिया जाएगा, जिनका पूरा जीवन वेद-प्रचार, प्रसार, लेखन, वैदिक साहित्य लेखन व समाज सेवा में लगा हो।

3. आर्य गौरव पुरस्कार सृ. सं. 1960853114.15.16 के लिए पुरस्कार संख्या 3 प्रत्येक पुरस्कार 21000.00 इक्कीस हजार रुपयों का, यह पुरस्कार उन भजनोपदेशकों प्रचारकों को दिया जाएगा जिनका पूरा जीवन वैदिक धर्म के प्रचार-प्रसार में लगा रहा है।

4. आवेदन पत्र स्वयं या विद्वान् के निकटतम जीवन से परिचित, व्यक्ति द्वारा भी दिया जा सकता है। प्रत्येक आवेदन पत्र के साथ विद्वान् के निकटतम जीवन से परिचित व्यक्ति का अनुमोदन भी साथ आना आवश्यक है। सभी प्रस्ताव अनुभेदन के साथ ट्रस्ट के नीचे लिखे पते पर चयन समिति के पास 30 सितम्बर तक पहुंच जाने चाहिएं। बाद में आए प्रस्तावों पर विचार नहीं होगा। पुरस्कारों के लिए आए आवेदन पत्रों पर चयन समिति का निर्णय ही अन्तिम मान्य होगा।

पता : पुरस्कार चयन समिति राव हरिश्चन्द्र आर्य चेरिटेबल ट्रस्ट 387 आर्योदय कह कर मार्ग महल नागपुर-440032 (महाराष्ट्र)

-राव हरिश्चन्द्र आर्य, मैनेजिंग ट्रस्टी

Thearyasamaj.org

जन्म-मरण से छूटने का एक ही उपाय वैदिक सन्ध्या और नित्यकर्म

-ले० श्री मनमोहन कुमार आर्य, देहरादून

वेदों का अध्ययन करने पर हमें ज्ञात होता है कि ईश्वर ने हमारे लिए ही यह सृष्टि बनाई है और इसमें हमारे सुख के लिए नाना प्रकार के पदार्थ बनाकर हमें निःशुल्क प्रदान किए हैं। यही नहीं, हमारा शरीर भी हमें ईश्वर से निःशुल्क प्राप्त हुआ है। जिसका आधार हमारे पूर्व जन्मों के कर्म व प्रारब्ध हैं। हम ईश्वर के इन उपकारों के लिए कृतज्ञ हैं। हम ईश्वर की स्तुति, प्रार्थना व उपासना कर ही कृतघ्नता से बच सकते हैं। यदि ऐसा नहीं करेंगे तो हमें भावी जन्म-जन्मान्तरों में मानव जीवन का सदुपयोग न करने का भारी मूल्य चुकाना पड़ेगा, इसमें किंचित सन्देह नहीं है। हमारे ऋषि मुनियों ने हमारा यह काम आसान कर दिया है। महाभारत काल तक का समस्त वेद व धर्म संबंधी साहित्य अब सुलभ नहीं है। महाभारत युद्ध के बाद सारे विश्व में अज्ञानान्धकार फैलने से सन्ध्या व यज्ञ की वैदिक सत्य पद्धतियां विलुप्त हो गई थी जिन्हें उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्ध में महर्षि दयानन्द जी ने अपने अपूर्व वैदिक ज्ञान, पुरुषार्थ व तप से हमें पुनः उपलब्ध कराया है। उनके द्वारा ब्रह्मयज्ञ व सन्ध्योपासना हेतु पंचमहायज्ञ विधि की रचना की गई। इसमें प्रमुख ब्रह्मयज्ञ जिसे ईश्वरोपासना भी कहते हैं, उसका सविस्तार वर्णन किया है और उसकी पूरी विधि भी लिखी है। सन्ध्योपासना विधि में शिखा बन्धन, आचमन, इन्द्रिय स्पर्श, मार्जन, प्राणायाम, अघमर्षण व मनसा परिक्रमा के मन्त्रों व उनके संस्कृत व आर्य भाषा हिन्दी में अर्थों व विधियों को लिखकर व समझाकर दयानन्द जी ने उपस्थान मन्त्रों को लिखा है और इसके बाद गायत्री मन्त्र, समर्पण मन्त्र व अन्त में नमस्कार शान्तिपाठ के मन्त्रोच्चार से सन्ध्या का समापन किया है। ईश्वरोपासना की संसार में यह सर्वोत्तम व एकमात्र विधि है। जिससे लक्ष्य 'मोक्ष' की प्राप्ति होती है। आज के लेख में हम उपस्थान के मन्त्रों को अर्थ सहित प्रस्तुत कर रहे जिससे पाठक इनसे परिचित होने के साथ इनका महत्त्व जान सकें और इसका सेवन कर धर्म, अर्थ, काम व मोक्ष रूपी लाभ प्राप्त कर सकें। उपस्थान व उपासना दोनों का एक ही अर्थ है। उप का अर्थ समीप और आसन व स्थान का अर्थ बैठना व स्थित होना है। ईश्वर किसी स्थान विशेष पर न होकर सर्वव्यापक और सर्वान्तर्यामी है। इस कारण वह हमारे शरीर के अन्दर भी विद्यमान है तथा हृदय गुहा में हमारी आत्मा विद्यमान होने व उसके अन्दर ईश्वर के व्यापक होने से इसी हृदय गुहा में ईश्वर का साक्षात्कार किया जा सकता है। उपस्थान का अर्थ जहां ईश्वर के समीप स्थित होना है वहीं ईश्वर को अपनी आत्मा के भीतर अनुभव कर उसके साक्षात्कार का प्रयत्न करना भी है। हम पहले उपस्थान के मन्त्रों को प्रस्तुत कर रहे हैं।

ओ३म् उद्वयं तमसस्परि स्वः पश्यन्तऽउत्तरम्।

देवं देवत्रा सूर्यमगन्म ज्योतिरूत्तमम्।। यजुर्वेद 35/14

उदु त्यं जातवेदसं देवं वहन्ति केतवः।

दृशे विश्वाय सूर्यम्।। यजुर्वेद 33/31

चित्रं देवानामुदगादनीकं चक्षुमित्रस्य वरुणस्याग्नेः।

आप्रा द्यावापृथिवीः अन्तरिक्षं सूर्यऽ आत्मा जगतस्तस्थुषश्च स्वाहा।।

तच्चक्षुर्देवहितं पुरस्ताच्छुक्रमुच्चरत्।

पश्येम शरदः शतं जीवेम शरदः शतं श्रृणुयाम शरदः शतं प्र ब्रवाम शरदः शतमदीनाः

आइए, अब इन 4 मन्त्रों के क्रमशः हिन्दी में भाषार्थों को भी क्रमशः जान लेते हैं।

इन मन्त्रों में सन्ध्या, उपासना व ध्यान करने वाला भक्त ईश्वर से प्रार्थना करता हुआ कहता है कि हे परमेश्वर! सब अन्धकार से अलग, प्रकाश स्वरूप, प्रलय के पीछे सदा वर्तमान, देवों में भी देव अर्थात् प्रकाश करने वालों में प्रकाशक, चराचर के आत्मा, जो ज्ञान स्वरूप और सबसे उत्तम आपको जान कर हम लोग सत्य को प्राप्त हुए हैं। हमारी रक्षा करनी आपके हाथ में है। हे ईश्वर! ऋग्वेदादि चार वेद आपसे ही प्रसिद्ध हुए हैं। आप ही प्रकृत्यादि सब भूतों में व्याप्त हो रहे हैं तथा आप ही सब जगत् के उत्पत्तिकर्त्ता हैं, इन कारणों से आप 'जातवेदा' के नाम से प्रसिद्ध हैं। आप सब देवों के देव और सब जीवादि जगत् के भी प्रकाशक हैं। अतः आपकी विश्वविद्या की प्राप्ति के लिए हम लोग आपकी उपासना करते हैं। हे परमेश्वर! आपको वेद की श्रुति और जगत् के पृथक-पृथक रचना आदि नियामक गुण जनाते और प्राप्त कराते हैं। आपके विश्व के सर्वव्यापक और सर्वान्तर्यामी स्वरूप की ही हम उपासना करें अन्य किसी की नहीं क्योंकि आप सर्वोपरि हैं। प्राणों और जड़ जगत के स्वामी व आत्मा को 'सूर्य' कहते हैं। हे ईश्वर! आप ही सूर्य और अन्य सब लोकों को बना कर उनका धारण और रक्षा करने वाले हैं। आप ही रागद्वेषरहित मनुष्यों तथा सूर्य लोक और प्राणों का प्रकाश करने वाले मित्र के समान हैं। आप ही सब उत्तम कामों तथा वर्तमान मनुष्य में प्राण, अपान और अग्नि का प्रकाश करने वाले हैं, आप ही सकल मनुष्यों के सब दुःखों का नाश करने के लिए परम उत्तम बल हैं, वह आप परमेश्वर हमारे हृदयों में अपने यथार्थ रूप से प्रकाशित है ईश्वर! आप ब्रह्म हैं अर्थात् आप सबसे बड़े हैं। आप सबके द्रष्टा और धार्मिक विद्वानों के परम हितकारक हैं। आप सृष्टि के पूर्व, पश्चात् और मध्य में सत्य स्वरूप से वर्तमान रहते हैं। सब जगत् के बनाने वाले आप ही हैं। हे परमेश्वर! आपको हम लोग सौ वर्ष पर्यन्त देखें, सौ वर्ष पर्यन्त तक जीवित रहें, सौ वर्ष पर्यन्त तक कानों से आपकी स्तुति व महिमा के गीतों को सुनें और आपकी महिमा का ही सर्वत्र उपदेश करें। हे परमेश्वर! हम आपकी कृपा से कभी किसी के अधीन न रहे अर्थात् पराधीन न हों तथा सदैव स्वाधीन रहें। आपकी ही आज्ञा का पालन और कृपा से हम सौ वर्षों के उपरान्त भी देखें, जीवें, सुनें-सुनावें और स्वतन्त्र रहें। अरोग्य शरीर, दृढ़ इन्द्रिय, शुद्ध मन और आनन्द सहित हमारा आत्मा सदा रहे। हे ईश्वर! आप ही एकमात्र सभी मनुष्यों के उपास्य देव हैं। जो मनुष्य आपको छोड़ कर आप से भिन्न किसी अन्य की उपासना करता है, वह इन उपस्थान के 4 मन्त्रों के भाषार्थ लिखकर महर्षि दयानन्द ने एक बहुत महत्त्वपूर्ण पंक्ति यह लिखी है कि मनुष्य व उपासक ईश्वर के प्रेम में अत्यन्त मग्न होकर अपनी आत्मा और मन को परमेश्वर में जोड़ कर उपयुक्त मन्त्रों से स्तुति इन उपस्थान के मन्त्रों का अर्थ सहित पाठ करते हुए सर्वान्तर्यामी ईश्वर को अपनी आत्मा में अनुभव करना है। मल, विक्षेप व आवरण कट व छंट जाते हैं और ईश्वर का प्रत्यक्ष तथा साक्षात्कार ईश्वर की कृपा होने व उपासक में उसकी पात्रता होने पर हो जाता है। यह साक्षात्कार ही मनुष्य जीवन का सबसे बड़ा पुरुषार्थ रूपी धन हैं। इस धन से संसार का सबसे अधिक आनन्द तो मिलता ही है, जन्म व मरण से छूटकर बहुत लम्बी अवधि 31 नील 10 खरब 40 अरब वर्षों तक मुक्ति का सुख प्राप्त होता है। यदि यह कार्य इस जीवन में नहीं किया तो फिर युगों-युगों तक यह अवसर दोबारा मिलेगा या नहीं, इस बारे में कुछ कहा नहीं जा सकता। बिना वैदिक विधि की उपासना किए केवल अच्छे कर्मों से ही ईश्वर के साक्षात्कार का लाभ व आनन्द तथा मोक्ष प्राप्त नहीं होता। इसके लिए ईश्वरोपासना सहित पंच महायज्ञ व सभी वैदिक कर्मों का करना परमावश्यक है। अन्यथा मृत्योपरान्त दुःख ही दुःख भोगना होगा। यह हमारे तत्वदर्शी ऋषियों की सर्वसम्मत घोषणा है। उपस्थान के मन्त्रों का पाठ व तदनुरूप भावना करने के बाद गायत्री मन्त्र का पाठ, समर्पण मन्त्र और नमस्कार मन्त्र का भी विधान है। इसे पूरा करके सन्ध्या समाप्त होती है। यह तीन मन्त्र क्रमशः निम्न है-**गायत्री मन्त्र- ओ३म् भूर्भुवः स्वः। तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि। धियो यो नः प्रचोदयात्।।**

-यजुर्वेद 36/3

(शेष पृष्ठ 6 पर)

Thearyasamaj.org

योग साधना

-ले० श्री स्वर्गीय श्री शान्ति स्वरूप गुप्त

तपस्विभ्योऽधिको योगी ज्ञानिभ्योऽपि मतोऽधिकः।
कर्मिभ्यश्चाधिको योगी तस्माद्योगी भवार्जुन।।

-गीता 6 I46

योग का महत्त्व वर्णन करते हुए भगवान् ने अर्जुन से कहा- ''योगी की महत्ता तपस्वी एवं ज्ञानी दोनों से उच्च है एवं कर्म करने वालों में भी योगी का स्थान उच्चतम है। अतः अर्जुन! तू योगी बन।'' योगाभ्यास के लिए मनुष्य को अपने आपको निरन्तर योग-साधना में तत्पर रखना पड़ता है- ''योगी आत्मानं सततं भुञ्जीत।'' मन में उद्भूत होने वाली प्रत्येक वृत्ति का निरीक्षण परीक्षण कर उन पर नियन्त्रण करना ही योग है- ''योगश्चित्तवृत्तिनिरोधः।'' अतः प्रातः काल से लेकर शयन पर्यन्त साधक को अपना समस्त समय योग के ग्रन्थों के स्वाध्याय, योग की परिचर्या, शरीर से आसनादि के अभ्यास, मन से साधना तथा मनन आदि कृत्यों में व्यतीत करना पड़ता है। तभी योगी सत्वर सिद्धि को प्राप्त करने में कृतकार्य होता है। अन्यथा अंशतः योग साधना से वृत्तियां तो क्रमशः सात्त्विक हो सकेंगी लेकिन सफलता अंशतः ही प्राप्त हो पावेगी है।

अनेक व्यवसायों में संलग्न बुद्धि के द्वारा मन का निरोध सम्भव नहीं। योग साधना के लिए सर्वप्रथम तो एकान्त में एकाकी रहना परमावश्यक है। साधना के लिए एकान्त स्थल ही अपेक्षित है। योगाभ्यास के निमित्त स्थान रमणीय तथा शीतोष्ण तापमान वाला हो जहां अधिक वायु एवं अधिक प्रकाश का समावेश न हो, बिच्छू सर्प आदि हिंसक प्राणी न हों, और जहां साधक निश्चिन्ततापूर्वक अभ्यास कर सकें। उत्तम जल तथा हरीतिमा से आवेष्टित उद्यान भी साथ में अवस्थित रहे तो साधना के लिए और भी श्रेयस्कर साधक को विषय-भोग के साधन नहीं एकत्र करने चाहिए। उससे मन व्यग्र होता है एवं ब्रह्मचर्य में बाधा पहुंचती है। चित्त, मन एवं इन्द्रियों को स्वैरचारी होने से बचाना एवं सत्कर्म में प्रेरित करना साधक का प्राथमिक कर्त्तव्य समझा जाना चाहिए। साधक द्वारा सम्पादित समस्त कृत्य ''सर्वभूतहिते रताः'' होने चाहिए। आसन के लिए मृग चर्मासन पर सूती वस्त्र बिछा लेना चाहिए।

आसन का स्थान न बहुत ऊंचा हो, न बहुत नीचा, क्योंकि नीचे में सर्दी-गर्मी का प्रभाव एवं ऊंचे में गिरने की आशंका बनी रहती हैं। अभ्यास से पहले वस्ति, धौती, नेती, नौलिकी, त्राटक, कपालभाती नामक षट्कर्मों द्वारा शरीर की शुद्धि कर लेने के पश्चात् ही ध्यानादि का अनुष्ठान सम्भव है। मल-संचय से चित्त की एकाग्रता में व्याघात होता है। शुद्धि के पश्चात् आसन-सिद्धि कर के साधक को प्राणायाम का अभ्यास करना चाहिए। प्राण स्थिर हुए बिना चित्त स्थित नहीं होता। अतः प्राणायाम के अभ्यास काल में मनुष्य को दूध-घी का ही विशेष सेवन करना चाहिए, इससे शरीर का भेद दूर हो जाता है, शरीर तेजस्वी, नेत्र निर्मल और वीर्य स्थिर हो जाता है।

योग-साधना से देह, इन्द्रिय, प्राण-संस्थान, मज्जा, मन आदि सभी की शुद्धता हो जाती है। मन की एकाग्रता के लिए इन्द्रियों की समस्त क्रियाओं पर संयम की आवश्यकता है। अतः दसों इन्द्रियों के क्रिया कलाप को नियंत्रित किए बिना मन की एकाग्रता सम्भव नहीं है। किसी भी इन्द्रिय से यदि मन उस ओर आकृष्ट हुआ तो एकाग्रता में बाधा पहुंचती है। बैठने के समय मस्तक, गले एवं धड़ को समरेखा में रखना आवश्यक है। मस्तक के पृष्ठवंश तक मज्जा प्रवाह चलता है। इस संस्थान को सीधा रखने से ही योग साधना से होने वाला सहज आनन्द प्राप्त होता है, शरीर को स्तब्ध और शान्त रखने से एक अभौतिक आनन्द की अनुभूति होने लगती है। इस काल में दृष्टि नासिकाग्र पर रखनी चाहिए।

नासिकाग्र पर दृष्टि रखने से समाधि की अद्वैतावस्था प्राप्त होने लगती है। साधना काल में मन में विविध कल्पना तरंगें हिलोरें लेने लगती हैं, किसी समय भय, कभी उदासीनता, और कभी निराशा उत्पन्न होने लगती है, पर इनसे साधक को घबराने की आवश्यकता नहीं। अभ्यास-काल में कठोर ब्रह्मचर्य व्रत का पालन करना चाहिए। केवल जननेन्द्रिय का संयम ही ब्रह्मचर्य नहीं, अपितु समस्त इन्द्रिय जनित वासनाओं पर अधिकार रखना वांछनीय है।

इस प्रकार मन की साधना करने वाला योगी ही अखण्ड शान्तिमय प्रसन्नता प्राप्त कर सकता है। योगी को अति भोजन नहीं करना चाहिए। अधिक उपवास करना तथा अधिक शयन-सुख का उपभोग करना भी साधक के लिए हानिकारक है। मन अन्नमय एवं प्राण जलमय है। अतः उत्तम अन्न और उत्तम जल का सेवन करने से ही मन एवं प्राण स्वस्थ रहते हैं। स्वस्थ मन से चित्त की वृत्तियों का शीघ्र निरोध हो जाता है। मन के स्थिर होने से मन सी स्थिति आत्मा में होती है। आत्माएं स्थिर होने से दुःख की अत्यन्त निवृत्ति सम्भव हो जाती है और तभी उसे दिव्य आनन्द की उपलब्धि होने लगती है जो योग की सिद्धि के लिए परमावश्यक है।

-संकलनकर्त्ता मृदुला अग्रवाल 19 सी, सरत बोस रोड, कोलकाता

पृष्ठ 5 का शेष-जन्म-मरण से.....

समर्पण मन्त्र-हे ईश्वर दयानिधे! भवत्कृपयाऽनेन जपोपासनादिकर्मणा धर्मार्थ-काममोक्षाणां सद्यः सिद्धि-र्भवेन्नः।

नमस्कार मन्त्र-ओ३म् नमः शम्भवाय च मयोभवाय च नमः शंकराय च मयस्काराय च नमः शिवाय च शिवतराय च।।

शांतिपाठ का अंतिम मन्त्रः ओ३म् शान्तिः, शान्तिः, शान्तिः।

गायत्री मन्त्र का संक्षिप्त अर्थ- ईश्वर हमारे प्राणों का भी प्राण अर्थात् वह हमें प्राणों से भी अधिक प्रिय है, वह दुःख निवारक है। तथा सभी सुखों को देने वाला है। ईश्वर सब जगत को उत्पन्न करने वाला है तथा सब ऐश्वर्य का देने वाला है। सब की आत्माओं का प्रकाश करने वाला और सबको सब सुखों का दाता है। वह अत्यन्त ग्रहण करने योग्य है। वह शुद्ध विज्ञानस्वरूप है तथा हम लोग सदा प्रेम भक्ति से निश्चय करके उसे अपनी आत्मा में धारण करें। किस प्रयोजन के लिए ? इसलिए कि वह सविता देव परमेश्वर हमारी बुद्धियों को कृपा करके सब बुरे कामों से हटाकर सदा उत्तम कामों में प्रवृत्त करे। समर्पण मन्त्र का भाषार्थ-हे ईश्वर दयानिधे! आपकी कृपा से जो-जो उत्तम काम हम लोग करते हैं, वे सब आपको समर्पित हैं। हम लोग आपको प्राप्त होकर 'धर्म' जो सत्य न्याय का आचरण करना है, 'अर्थ' जो धर्म से पदार्थों की प्राप्ति करना है, 'काम' जो धर्म और अर्थ से इष्ट भोगों का सेवन करना है और 'मोक्ष' जो सब दुःखों से छूटकर सदा आनन्द में रहना है। इन चार पदार्थों को नमस्कार करते हैं। हम आशा करते हैं कि पाठक इस संक्षिप्त लेख में प्रस्तुत विचारों को लाभप्रद अनुभव करेंगे। यदि किसी भी पाठक को इस लेख से कुछ लाभ होता है तो हम अपने परिश्रम को सार्थक समझेंगे।

मां सत्यप्रियायति एवं महात्मा चैतन्यमुनि जी सम्मानित

गत दिनों हिमाचल प्रदेश सोलन में डी. ए. वी. प्रबन्धक समिति द्वारा आयोजित भव्य समारोह में अन्य विद्वानों के साथ-साथ मां सत्यप्रियायतिजी एवं महात्मा चैतन्यमुनि जी को भी सम्मानति किया गया। यह सम्मेलन पूज्य महात्मा जी की अध्यक्षता में सम्पन्न हुआ तथा मुख्य अतिथि समिति के अध्यक्ष पूनम सूरी जी थे। देश भर से आए हजारों डी. ए. वी. संस्थान से जुड़े व्यक्तियों ने समारोह को सार्थकता एवं भव्यता प्रदान की। उल्लेखनीय है कि पूज्य माता जी तथा महात्मा जी ने सन् 1996-97 से लेकर आज तक डी. ए. वी. के कालेजों तथा स्कूलों में सैंकड़ों ही सार्थक चरित्र निर्माण एवं वैदिक चेतना शिविर संचालित किए हैं जिनमें से बनीखेत, अमृतसर, जालन्धर, बटाला, नकोदर, फिरोजपुर, जलालाबाद, मोहन आश्रम हरिद्वार, पंचकूला तथा अबोहर आदि कालेजों में लगाए गए शिविर विशेष उल्लेखनीय है। इन आवासीय शिविरों में पूज्य माता जी व महात्मा जी जिस मनोवैज्ञानिक व तार्किक ढंग से अत्याधिक परिश्रम करके सार्वभौमिक वैदिक विचारधारा की चेतना शिविरार्थियों में स्थापित करते थे। उसका स्मरण करके आज भी डी. ए. वी. के शिविरार्थी, आयोजक एवं अधिकारी अत्याधिक प्रफुल्लित होते हैं।

-प्रबन्धक

Thearyasamaj.org

मानव जीवन पूर्णिमा और अमावस्या की तरह है

-ले० पंडित उम्मेद विशारद वैदिक प्रचारक गढ़निवास मोहकमपुर देहरादून

पूर्णिमा

ओं पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात्पूर्णमुदच्यते।
पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते।।

पूर्ण को प्राप्त करना ही मानव जीवन का परम लक्ष्य है, न केवल चैतन्य समुदाय अपितु सृष्टि का प्रत्येक कण पूर्णता के लिए लालायित और गतिशील है।

भौतिक जीवन में जिसके पास अल्प है वह अधिक बढ़ाना चाहता है। किसी को भी संतोष नहीं है। प्रत्येक सम्राट व राष्ट्र अपनी अपूर्णता को पूर्ण करने के लिए लूटपाट कत्लेआम करते रहते हैं। इस प्रकार प्रत्येक प्राणी में पूर्णता की हुडक देखी जाती है। इतिहास का विद्यार्थी, संगीत का विद्यार्थी, विज्ञान का विद्यार्थी, चिकित्सक वेरिष्टर, विद्वान् व पण्डित सदैव एक दूसरे के ज्ञान से अपने को पूर्ण समझते हैं। एक दूसरे की सहायता लिया करते हैं।

जीवन को पूर्णता के लिए क्षुधा की निवृत्ति के लिए अन्धकार को प्रकाश के लिए तथा नदियां, सागर की ओर वृक्ष आकाश की और समस्त सौरमण्डल समस्त विश्व ब्रह्माण्ड पूर्णता के लिए भाग रहे हैं। संसार में कोई भी प्राणी व पदार्थ ऐसा नहीं है जो पूर्ण हो। यहां तक कि हमारी इन्द्रियां सदैव अपनी-अपनी वासनाओं से अपूर्ण अर्थात् अतृप्त रहती है। मन सदैव नए-नए विकार पूर्ण करने में लगा है। केवल पूर्ण है तो ईश्वर है वह सर्व शक्तिमान सत्ता जिसके लिए कुछ भी अपूर्ण नहीं है अर्थात् पूर्ण ब्रह्मा परमात्मा से पूर्ण सृष्टि की उत्पत्ति हुई। पूर्ण से पूर्ण निकाल देने पर भी पूर्ण ही शेष रह जाता है।

पूर्णिमा प्रेयमार्ग का स्वरूप है तो अमावस्या श्रेयमार्ग का पूर्ण स्वरूप है। इसमें सूर्य चन्द्र की जीवाला और परमात्मा से तुलना की गई है। पूर्णिमा का चांद पूरे यौवन पर होने पर भी पूर्ण नहीं है। उसमें फिर भी न्यूनता रहती है, वह निष्कलंक नहीं है क्योंकि वह जीवात्मा का तो प्रतीक है। वह परिछिन्न और अल्पज्ञ होने से निष्कलंक कभी नहीं हो सकता है। उसमें प्रकाश भी परमात्मा रूपी सूर्य का ही तो है और जब सूर्य रूपी परमात्मा की ओर बढ़ता है तो तब उसके प्रकाश की कला और भी घटने लगती है। यहां तक कि उसका अस्तित्व ही समाप्त हो जाता है। केवल सूर्य रूपी परमात्मा का ही अस्तित्व शेष रह जाता है।

बाल्यावस्था से पूर्ण यौवन तक संस्कारी, सदाचारी, धार्मिक, सत्यवादी पुरुषार्थ जीवन पूर्णमासी के तुल्य है। जीवन के मुक्त कर्म पके हुए फल की तरह मिठास देते हैं। जीवन का सर्वोच्च आनन्द प्राप्त होता है।

अमावस्या

हम पहले कह चुके हैं अमावस्या जीवन का श्रेय मार्ग का पूर्ण स्वरूप है। पूर्णिमा का चांद पूरे यौवन पर होने पर भी वह पूर्ण नहीं है, उसमें कमी अर्थात् न्यूनता रहती है, क्योंकि वह निष्कलंक नहीं है, क्योंकि वह जीवात्मा का ही तो प्रतीक है, वह परिछिन्न और अल्पज्ञ होने से निष्कलंक कभी हो ही नहीं सकता है और जो प्रकाश भी है वह सूर्य रूपी परमात्मा का ही तो है। और जब यह सूर्य रूपी परमात्मा की ओर बढ़ता है तो इसके प्रकाश की कला और घटने लगती है। यहां तक कि उसका अस्तित्व ही समाप्त हो जाता है, केवल सूर्य रूपी परमात्मा का ही अस्तित्व शेष रह जाता है, उसी दिन को अमावस्या के नाम से पुकारा जाता है। उस दिन चन्द्र रूपी जीवात्मा की सम्पूर्ण कला सूर्य रूपी परमात्मा में पूर्ण रूप से विलीन हो जाती है।

अमावस्या जीवन की असम्प्रज्ञान समाधि है, क्योंकि अमावस्या में परमात्मा की प्रधानता रहती है। इसलिए योगियों ने शरीर त्याग का महत्त्व अमावस्या के ही दिन का महत्त्व श्रेष्ठ माना है। यदि उत्तरायण काल हो और वह अमावस्या का दिन हो तो वह सर्वश्रेष्ठ काल हैं। भीष्म पिता ने इसी दिन की प्रतीक्षा में छः माह शरीर नहीं छोड़ा था, महर्षि दयानन्द जी ने भी अमावस्या के दिन ही त्याग किया था।

पृष्ठ 2 का शेष-महामृत्युञ्जयं.....

किसी को किसी प्रकार का दुख न होगा। प्रभो! हमें ऐसा परिपक्व और सुगन्धि युक्त कर दो कि हम मरते हुए भी आपकी अमृतमयी गोद से कभी अलग न हों।

महामृत्युञ्जय! महारुद्र! त्राहि मां शरणागतम्।

जन्म-मृत्यु-जरा-रोगैः पीडितं कर्मबन्धनैः।।

हे महामृत्युञ्जय! हे महारूद्ररूप परमेश्वर! जन्म, मत्यु तथा वार्धक्य आदि विविध रोगों एवं कर्मों के बन्धनों से पीड़ित मैं आपकी शरण में आया हूं। आप मेरी रक्षा करें। मेरा उद्धार करें।

भगवन्! आप त्र्यम्बक अर्थात् तीनों लोकों की आंख हैं। उत्पत्ति, स्थिति और प्रलय के अधिष्ठाता है। हमारी यथार्थ अवस्था स्थिति से सम्यक् प्रकार परिचित हैं। अतः आप हमारा मृत्युभय से छुटकारा अवश्य करें, पर अपनी अमृतमयी गोद से कभी बिछुड़ने न दें।

वस्तुतः पूर्ण परिपक्व अवस्था तक वही व्यक्ति पहुंच सकता है जिसमें पूर्णरूपेण शारीरिक क्षमता हो, स्वस्थ हो, मानसिक और बौद्धिक रूप से पूर्णतः समर्थ हो। निराशा, हताशा, आलस्य, प्रमाद का नामोनिशान न हो। परिस्थितियों के अनुकूल स्वयं को ढाल सके। आत्मविश्वास, उत्साह, साहस से परिपूर्ण हो। सकारात्मक सोच रखते हुए जीवन व्यतीत करें। दुष्कर्मों से दूर रहें। अपने आध्यात्मिक लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए सतत प्रयत्नशील रहें, तभी की गई प्रार्थना सार्थक हो सकती हैं।

प्रार्थना की सार्थकता के लिए गीता में श्रीकृष्ण ने एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण बात कही है-

प्रयाणकाले मनसाचलेन भक्त्या युक्तो योगबलेन चैव।
भ्रुवोर्मध्ये प्राणमावेश्य सम्यक् स तं परं पुरुषमुपैति दिव्यम्।।
-8/10

अन्तकाल में वह भक्ति युक्त पुरुष योगबल से भृकुटि के मध्य में प्राण को अच्छी प्रकार स्थापन करके निश्चल मन से स्मरण करता हुआ उस दिव्यस्वरूप परम पुरुष परमात्मा को ही प्राप्त होता है।

कठोपनिषद् में भी मोक्ष परम गति का स्वरूप स्पष्ट करते हुए कहा गया है-

यदा पञ्चावतिष्ठन्ते ज्ञानानि मनसा सह।
बुद्धिश्च न विचेष्टते तामाहुः परमां गतिम्।। 2/6/10

जब शुद्ध मनयुक्त पांच ज्ञानेन्द्रिय जीव के साथ रहती हैं और बुद्धि का निश्चय स्थिर होता है, उसको परम गति अर्थात् मोक्ष कहते हैं।

मोक्ष की प्राप्ति कब होगी ? इसका स्पष्टीकरण प्रस्तुत है-

भिद्यते हृदयग्रन्थिश्छिद्यन्ते सर्वसंशयाः।
क्षीयन्ते चास्य कर्माणि तस्मिन् दृष्टे परावरे।। -मुण्डक. 2/2/8

जब इस जीव के अविद्या-अज्ञान रूपी गांठ कट जाती है, सब संशय छिन्न हो जाते हैं और दुष्टकर्म क्षय को प्राप्त होते हैं, तभी उस परमात्मा में निवास करता है, जोकि अपने आत्मा के भीतर व्याप्त रहा है।

अतः मन, इन्द्रिय आदि को वश में रखते हुए, दुष्टकर्म त्याग कर, बुद्धि को स्थिर करके, हम उस त्र्यम्बक अर्थात् त्रिकालदर्शी परमात्मा का ही आश्रय लें। हमारे लिए यही श्रेयस्कर है।

एतदालम्बनं श्रेष्ठं एतदालम्बनं परम्।
एतदालम्बनं ज्ञात्वा ब्रह्मलोकेमहीयते।।

Thearyasamaj.org

वेदवाणी
आत्मा ज्ञान और सौन्दर्य के साथ उदित होता है

केतुं कृण्वन्नकेतवे पेशो मर्या अपेशसे। समुषद्भिरजायथाः।।
-ऋ० १।६।३, साम० उ० ६।३।२४, अ० २०।६९।१९

ऋषि-मधुच्छन्दाः।। देवता-इन्द्रः।। छन्दः-गायत्री।।

विनय-यह शरीर तो मर्य है, मुर्दा है। इस समय भी मुर्दा है। जब इस शरीर को अर्थी पर उठाकर जलाने के लिए ले जाया जाता है, उस समय यह शरीर जैसा मुर्दा होता है वैसा ही यह अब भी है, परन्तु इस समय यह मुर्दा इसलिए नहीं दिखता, क्योंकि इन्द्र (आत्मा) ने अपनी चेतनता, अपनी सुन्दरता इसमें बसा रखी है।

हे इन्द्र आत्मन्! जब यह शरीर सुषुप्तावस्था में होता है तब तुम ही इसमें से अपनी जागरण शक्तियों को समेट लेते हो, अपने में खींच लेते हो, अतः तुरन्त हमारा चलना-फिरना, बोलना आदि सब व्यापार बन्द हो जाता है। सदा चलने वाले मन के भी सब संकल्प विकल्प बन्द हो जाते हैं। यह शरीर जड़वत् हो जाता है और जब तुम फिर अपनी जागरण रश्मियों को शरीर में फैला देते हो तो फिर मनुष्य उठ बैठता है, सोचना-विचारना शुरू हो जाता है, मनुष्य फिर चलने बोलने लगता है। इस 'अकेतु' शरीर में फिर चेतना दिखने लगती है-उसका खोया हुआ जाग्रत् रूप फिर उसमें आ जाता है। हे इन्द्र! सुषुप्ति में तो तुम अपनी जागरण-शक्तियों को केवल समेट लेते हो, पर जब तुम इस शरीर को छोड़ ही देते हो तब क्या होता है ? तब यह शरीर अपने असली रूप में-मिट्टी के ढेर के रूप में दिख पड़ता है। न इसमें ज्ञान होता है और न रूप। हे इन्द्र! इस मिट्टी के बर्तन में अमृत होकर तुम ही भरे हुए हो। इस मिट्टी में जो रूप, सुडौलता आ गई है, सुन्दर अवयव संनिवेश हो गया है यह तुम्हारे व्यापने से हुआ है और इस मिट्टी की मूर्ति में शव की अपेक्षा जो इतनी चेतनता दिखाई देती है वह तुम्हारे सामने से ही हुई है। यह शरीर जो मुर्दा होने पर इतना अपवित्र समझा जाता है कि इसे छू लेने से स्नानादि शौच करना पड़ता है वही असल में मुर्दा शरीर, हे परम-पावन इन्द्र! इस समय तुम्हारे समाए रहने के कारण, तुम्हारे पवित्र संस्पर्श से इतना पवित्र हुआ-हुआ है। तुम्हारा इतना अद्भुत महात्म्य है। मनुष्य तुम्हारे इस माहात्म्य को क्यों नहीं देखता ?

आज हम स्पष्ट देख रहे हैं कि इन सब मुर्दा जड़ शरीरों में चेतनता लाते हुए और इन अरूपों में रूप-सौन्दर्य प्रदान करते हुए तुम्हीं अपनी जाग्रत शक्तियों के साथ उदय हुए-हुए हों, तुम ही आए हुए हो।

-वैदिक विनय से साभार

अन्तर्राष्ट्रीय योग दिवस बड़ी धूमधाम से सम्पन्न

वैदिक सत्संग परिवार एवं भारतीय योग संस्थान के संयुक्त तत्वावधान में अन्तर्राष्ट्रीय योग दिवस बड़ी धूमधाम से रेल डिब्बा, कारखाना कपूरथला में सम्पन्न हुआ। देव भूमि हरिद्वार से पधारे पूज्य आचार्य कुमार राघव आर्य (योगाचार्य) ने कार्यक्रम प्रारम्भ किया और कहा योग हमारे जीवन का महत्त्वपूर्ण स्वस्थ साधन है। तन मन को शुद्ध व पवित्र एवं स्वस्थ रखने का साधन योग्य योगाभ्यास के द्वारा ही परम देव परमात्मा का साक्षात्कार किया जा सकता है। अष्टांगयोग को अपना कर ही मानव सुखी हो सकता है। पूज्य आचार्य श्री देवराज जी ने भी अपना संदेश एवं आशीर्वाद प्रदान किया।

इस अवसर पर महर्षि देव दयानन्द सरस्वती योग साधना केन्द्र की स्थापना की गई। इस कार्यक्रम में अनेक गणमान्य जनों ने भाग लिया।

-नरेन्द्र कुमार सूद, प्रचार मन्त्री

श्री प्रेम भारद्वाज महामन्त्री, सम्पादक, प्रकाशक, मुद्रक द्वारा आर. के. प्रिंटर्स प्रैस, टाण्डा फाटक जालन्धर से मुद्रित होकर आर्य मर्यादा कार्यालय, गुरुदत्त भवन, चौक किशनपुरा, जालन्धर से इसकी स्वामिनी आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब के लिए प्रकाशित हुआ। E-mail: apspunjab2010@gmail.com
आर्य मर्यादा में प्रकाशित सारी लेखन सामग्री से सम्पादक का सहमत होना आवश्यक नहीं। प्रत्येक विवाद के लिए न्याय क्षेत्र जालन्धर होगा।